DOI: 10.51220/hjssh.v7i1.13

Himalayan J. Soc.Sci. & Humanities Vol- 7 pp.93 - 97, December, 2012, ISSN. 0975 - 9891

# पुराणों में वर्णित शासन व्यवस्था

जे0के0 गोदियाल एवं कुसुम डोबरियाल
संस्कृत विभाग
हे0न0ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय परिसर (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) पौड़ी गढ़वाल उत्तराखण्ड

**Received: 2.10.2012** **Revised: 10.11. 2012** **Accepted: 30.11.2012**

**ABSTRACT**

प्रस्तुत शोध में पुराणों में वर्णित शासन व्यवस्था का वर्तमान प्रशासनिक प्रणाली के साथ तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है जहां पौराणिक शासन व्यवस्था शास्त्रसम्मत, न्यायपूर्ण एवं व्यवहारिक प्रतीत होती है वहीं वर्तमान व्यवस्था में गुणात्मकता का अभाव एवं स्वार्थपरकता का आभास होता है।

**Key words:** पौराणिक शासन व्यवस्था, न्यायप्रणाली, राष्ट्रउत्थान, लोक कल्याण, प्रतिरक्षा, विश्लेषणात्क अध्ययन।

संस्कृत साहित्य में पुराणों का विशेष महत्त्व है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति को सर्वत्र प्रसारित करने में 'पुराणों' का योगदान सर्वाधिक है। भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म का प्रमुख आधार पौराणिक साहित्य ही है। वस्तुत: 'पुराण' हमारे सच्चे तथा आदर्श इतिहास है। पुराण साहित्य में विवधि विषयों के तात्त्विक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के कारण ही 'पुराण' को भारतीय विद्या का ज्ञान कोष कहा जाता है। 'पुराण साहित्य' की इसी विशेषता के कारण श्रीमद्भागवत में इसे पंचम वेद की संज्ञा देते हुये कहा गया है कि:-

**इतिहासपुराणं च पंचमो वे उच्यते।**[1]

वस्तुत: 'पुराण-साहित्य वेद का पूरक माना जाता है।

विषय वैविध्य और प्रतिपादन वैशिष्ट्य की दृष्टि से भी पौराणिक साहित्य का व्यापक महत्त्व है। वेद एवं वैदिक वाङ्मय में जो विषय सूत्रात्मक शैली में उपन्यस्त हैं, उन्हीं की विस्तृत मीमांसा पुराणों का प्रतिपाद्य विषय है। पुरूषार्थ चतुष्ट्य के साथ-साथ आदिकालीन समाज की संरचना का पौराणिक साहित्य में सुविस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। इस दृष्टिकोण से ''शासन व्यवस्था'' का निरुण भी पौराणिक साहित्य का महत्त्वपूर्ण पक्ष रहा है। पुराणों में ''ब्रह्म का तथा उसके विवर्त साहित्य में तत्कालीन समाज, उसकी कार्य विधि, शासनव्यवस्था, न्यायिक विधि एवं दण्ड विधान का भी पर्याप्त विवेचन उपलब्ध होता है।

पौराणिक साहित्य में जिस सामाजिक संरचना एवं शासन व्यवस्था का उल्लेख मिलता है वह शास्त्रसम्मत होने के साथ ही नितान्त व्यावहारिक तथा उपयोगी भी है। पुराण साहित्य में विकेन्द्रीकरण पर बल देते हुये राज्य के गठन को विकास की धुरी बतलाया गया है। श्रीमद्भागवत् पुराण में महर्षि व्यास ने भारत-वैभव के चित्रण के उद्देश्य से स्वयं को पुराणों के निबन्धन में नियोजित किया है-

©SHARAD

**इति भारतमाख्यानं मुनिनार कृपया कृतम्।**[2]

भारतवर्ष के वर्णन के प्रसंग में अनेक राजवंशों का वर्णन होना स्वाभाविक है। वंश मन्वन्तरादि का वर्णन पुराणों में ही होता है। इन्हीं संदर्भों में तत्कालीन शासन व्यवस्था भी पौराणिक साहित्य में विशिष्ट रूप में वर्णित हुई दिखलाई पड़ती है। पुराणों में प्रतिपादित शासन व्यवस्था विशुद्ध वैदिक है। वेदों में परम पुरूषार्थ के रूप में 'मोक्ष' ही विवेचित है। पुराणों में भी मुक्ति-रूप प्रयोजन के निमित्त परमात्मा के प्रति रागोद्वर्धन हेतु संसार का नश्वरत्त्व स्पष्ट करते हुए वंश व मन्वन्तरों का चित्रण किया गया है।

सामाजिक संघटना, वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, कर्म के प्रति निष्ठा चारित्रिक नीति का अनुपालन, आदर्श जीवन, विभिन्न मतों में सामंजस्य तथा लोक कल्याण की भावना इत्यादि कुछ ऐसे बिन्दु पौराणिक साहित्य में विस्तृत रूप में विवेचित हैं जिनसे तत्कालीन समाज की सुदृढ़ शासन व्यवस्था का पता चलता है। पौराणिक व्यवस्था में लोक कल्याण की भावना प्रबल थी। राजाओं को इसके अनुरूप ही जीवन पद्धति सुनिश्चित करनी पड़ती थी। लोक में धार्मिक जीवन की स्थापना, नीति व सदाचार की प्रतिष्ठा स्थापित करना पौराणिक व्यवस्था की प्रमुख उल्लेख नीति थी। पौराणिक व्यवस्था में देवताओं तक में सामंजस्य विद्यमान था। समाज में यह एकात्मकता स्थापित हो, इसी उद्देश्य से पुराण साहित्य स्पष्ट करता है कि इन्द्र, वरूण, अग्नि, सोम आदि सभी देवता परब्रह्म की प्रेरणा से अपने-अपने नियत कार्यों को देखते हुए परस्पर सहकारिता के भाव से रहते हैं-

**गणेभ्यः क्षोभमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे।**
**एका मूर्तिस्त्रयो भागा, ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः**[3]॥

इसी प्रकार न्याय व दण्डविधान का विवेचन करते हुए 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में कहा गया है कि जो ब्राह्मण भृत्य द्वारा या स्वयं वृष का कार्य करता है वह कृतघ्न माना गया है। पद्मपुराण की व्यवस्था है कि पुल्कस, श्वपच और अन्य मलेच्छ जातियाँ आदि हरि-सेवक है, तो वे अवश्य ही वन्दनीय है।[4] श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवदभक्त चण्डाल भी विप्र की तुलना में श्रेष्ठ है।[5]

महाभारत के अनुसार राजा परतन्त्र होता है, जिस प्रकार पृथ्वी मेघों पर, ब्राह्मण वेदों तथा पत्नी पति पर आश्रित होती थी उसी प्रकार राजा मंत्रीपरिषद् पर निर्भर होता है। इससे पता चलता है तत्कालीन समाज में निरंकुशता का शासन नहीं था, अपितु जनता, मंत्री व पुरोहितवर्ग के पारस्परिक सहयोग से ही शासन व्यवस्था निर्धारित होती थी। पौराणिक साहित्य में मानवीय मूल्यों पर आधारित व प्रतिपादित यह मानवोपयोगी व लोकोपकारिणी शासन व्यवस्था वर्तमान में नितान्त उपयोगी है। शासन व्यवस्था के एतिहासिक सन्दर्भ में विचार करने पर ज्ञात होता है कि भारत में प्राचीनकाल से ही अनेक प्रकार की शासनपद्धति प्रचलित थी। देश के विभिन्न क्षेत्रों में लोकतन्त्रात्मक, गणतन्त्रात्मक एवं राजतन्त्रात्मक शासन पद्धति विद्यमान थी। किन्तु इन सभी व्यवस्थाओं में मानव समाज का कल्याण एवं राष्ट्रभावना का प्राबल्य सर्वोपरि था। प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में कर्तव्य के निर्धारण एवं उसके निर्वहन के प्रति असीम आस्था का प्रकाशन पौराणिक-साहित्य का प्रमुख पक्ष है।

शासन व्यवस्था के प्रमुख घटकों में देश, राजा, मंत्रि-परिषद, न्यायप्रणाली, दण्डविहीन, लोककल्याण,

राष्ट्र उत्थान, सामाजिक विकास, शिक्षानीति, धर्म की रक्षा तथा शत्रुओं का विभर्दन उल्लेख्य है। पुराणसाहित्य में इन सभी विषयों पर विस्तार से चिन्तन किया गया है। प्रजा पालन के निमित्त राजा के विभिन्न कर्त्तव्यों का पुराणों में विवेचन किया गया है। पुराणों में वर्णन मिलता है कि राजा को सुदृढ़ शासन व्यवस्था स्थापित करने के लिए स्वल्प प्रमाद एवं आलस्य से बचना चाहिए। शत्रुओं के षड्यंत्र एवं आक्रमण से सावधान होकर प्रजा की रक्षा में दत्तचित्त होना राजा के लिए आवश्यक कर्तव्य बताया गया है। असामाजिक प्रवृत्तियों का दामन तथा सामाजिकों के अत्याचारों का निरोध करना राजा का आवश्यक कार्य बतलाया गया है। इन कार्यों के सम्पादन के लिये सैन्य बल एवं न्याय प्रक्रिया के सुदृढ़ीकरण पर पौराणिक साहित्य विशेष जोर देता है जो कि वर्तमान भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में निर्विवाद ग्राहय है।

राज्यों पर आधारित विकास-नीति की अवधारणा पुराणों में विवेचित है इसी प्रकार स्थानीय सामाजिक संस्थाओं एवं शिक्षा-नीति की अवस्थापना करते हुए सुशासन की स्थापना पर पौराणिक साहित्य विशेष बल देता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में उत्तम शासन व्यवस्था वाले राजा को ''राजसत्तम'' की संज्ञा दी गई है। पौराणिक वाङ्मय में उल्लेख मिलता है कि जिस राजा के राज्य में प्रजा, अपने पैतृक निवास में रहने वाली सन्तति की भांति, सानन्द एवं निर्भय होकर रहती है वह 'राजसत्तम' कहलाता है। प्रजा के कर्तव्यों की भी सम्यक् मीमांसा देखने को मिलती है। प्रजा का भी शासन के प्रति स्वाभाविक रूप से भक्तिमान, शुचितायुक्त एवं शालीन होना आवश्यक बतलाया गया है। जिस जनपद में भक्तियुक्त एवं पवित्र अन्तःकरण वाली प्रजा रहती है उसे उस जनपद की सम्पति माना गया है। कौटिल्य द्वारा भक्ति एवं शुचिता से युक्त मनुष्यों से परिपूर्ण 'राज्य' को अर्थ नामक पुरूषार्थ की संज्ञा दी गई है। महाभारत में प्रजा को साक्षात् पृथ्वी एवं राजा को उसका वरद पुत्र कहा गया है।[6] शतपथब्राह्मण में विवेचित आदर्श शासन व्यवस्था का अनुमान इस कथन से लगाया जा सकता है कि जब किसी राजा का अभिषेक होता था तो वह प्रतिज्ञा पूर्वक शपथ लेते हुए कहता है कि-हे पृथ्वि माँ मैं तुम्हारे प्रति द्वेष नहीं रखूँगा और तुम भी मेरे प्रति मत रखना।[7] इस प्रकार की भावना आज की शासन व्यवस्था में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है।

अग्निपुराण में शासन के सम्यक् संचालन के लिए सुस्पष्ट नीति व्याख्यायित है। शासन, प्रशासन तथा कार्यानुरूप अधिकारियों के दायित्त्वों का इसमें सविस्तार प्रतिपादन है। गुप्तचरों की व्यवस्था, राजा के कर्त्तव्य, प्रजा का दायित्व एवं सामाजिक सामाञ्जस्य इन सभी विषयों पर अग्निपुराण में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। पुराण की अद्योलिखित पंक्तियाँ पौराणिक शासन व्यवस्था को प्रकाशित करने के लिए पर्याप्त है:

**ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद् दशग्रामाधिपं नृपः।**
**शतग्रामाधिपञ्चान्यं तथैव विषयेश्वरम्॥**
**तेषां भोगविभागश्च भवेत कर्मानुरूपतः।**
**नित्यमेव तथा कार्यं तेषाञ्चारैः परीक्षणम्[8]॥**

राजा अपनी प्रजा की रक्षा किस तरह करे इस विषय में पौराणिक व्यवस्था है कि जिस तरह गर्भिणी स्त्री अपने सुख की चिन्ता किए बिना गर्भस्थ शिशु की चिन्ता करती रहती है उसी प्रकार राजा भी अपनी प्रजा

की रक्षा करे:-

**नित्यं राजा तथा भाव्यं गर्भिणी सहधर्मिणी।**
**यथास्वं सुखमुत्सृज्य गर्भस्थसुखमावहेत्॥**
**किंयज्ञैस्तपसा तस्य प्रजा यस्य न रक्षिता।**
**सुरक्षिता प्रजा यस्य स्वर्गस्य तस्य ग्रहोपमः॥**

क्या वर्तमान राष्ट्रीय परिदृश्य में ये पक्तियाँ प्रासंगिक नहीं हैं ? इस व्सवस्था से आगे बढ़कर 'पुराण' का कहना है कि जो शासक प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता उसका जीवन नरक है साथ ही प्रजा के दुष्कर्मो के पष्ठांश का भागी भी वहीं होता है।

**अरक्षिता प्रजा यस्य नरकं तस्य मन्दिरम्।**
**राजा षड्भागमादत्ते, सुकृताद् दुष्कृतादपि[10]॥**

गाँव अथवा नगरों में उत्पन्न विषम परिस्थितियों का सामना कैसे करना है ? उनके समाधान की क्या विधि होनी चाहिए-इसके प्रत्युत्तर में पुराण कहता है:-

**ग्रामे दोषान् समुत्पन्नान् ग्रामेशः प्रशमं नयेत्।**
**अशक्तो दशपालस्य स तु गत्वा निवेदयेत्॥**

आर्थिकनीति एवं पराक्रम के विषय में भी पुराण का स्पष्ट मत है कि राजा की आर्थिक नीति स्पष्ट व प्रभावकारी होनी चाहिए साथ ही उसे राष्ट्र की रक्षा के लिये सतत् सिंह के समान पराक्रमी होना चाहिए। क्या यह पुराणों की शासन व्यवस्था आज धरातल पर कहीं दिखती है ?

**विश्वांसयेच्चापि परं तत्व भूतेन हेतुना।**
**वकवच्चिन्तयेदर्थं सिंहवच्च पराक्रमेत्[11]॥**

श्रीमद्भावत पुराण में 'शासनव्यवस्था' में धर्म के मर्म को अंगीकृत किया गया है। प्रजा को धार्मिक शिक्षा प्राप्त हो इसका दायित्व राजा का बतलाया गया है इसके अभाव में यदि वह जनता से कर वसूल करता है तो वह स्वयं पाप का भागी बनता है।

**यः उद्धरेत्करं राजा प्रजाधर्मेष्व शिक्षयन्।**
**प्रजानां शमणं भुक्ते भंग च स्वं जहाति सः[12]॥**

मिथ्याभाषण पर भी कठोर दण्ड की व्यवस्था पुराणों में विवेचित है जबकि आज के शासक प्रत्यक्ष मिथ्याश्रित भाषण में दक्ष हैं। अनाथ, वृद्ध, गरीब एवं विधवाओं की रक्षा का सम्पूर्ण दायित्व शासक का था। किस पर विश्वास करना और किस पर नहीं करना इन सभी बिन्दुओं पर पौराणिक साहित्य में चिन्तन किया गया है-

**चौरक्षाधिकारिभ्यो राजापि हृतमाप्नुयात्।**
**अहृते यो हृतं ब्रूयान्निःसार्यो दण्ड्य एव सः॥**
**न विश्वसेच्च सर्वत्र तापसेषु च विश्वसेत्[13]॥**

पौराणिक बाड्मय में पग-पग पर ऐसी शासन-व्यवस्था की विवेचना की गई है, जो लोक कल्याण के सर्वथा अनुकूल है। धर्म, कर्म, राजनीति, संस्कृति समाज एवं व्यक्ति की उपयुक्त एवं सांगोपांग, जो व्यवस्था पौराणिक साहित्य में उपलब्ध होती है उसकी वर्तमान राष्ट्रीय परिदृश्य में व्यापक प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है ताकि हमारा यह राष्ट्र अपने पुरातन गौरव को हासिल कर सके और इसके लिए आवश्यक है कि हमारे शासक श्रीमद्भागवत की इन पक्तियों का भाव समझने की चेष्टा करें-

**वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्।**
**चित्राकारश्च शिखिवद् दृढ़भक्तिस्तथाश्ववत्।**
**भवेच्च मधुराभाषी तथा त्रकोकिलवन्नृपः[14]॥**

## सन्दर्भ


1. श्रीमद्भागवत् 1-4-20
2. वही 1-4-20
3. मत्स्यपुराण (प्रबन्धे) पृ0 58
4. पदमपुराण 3-31-106
5. श्रीमद्भागवत 67-9-10
6. महाभारत, शान्तिपर्व (प्रबन्धे-पृ0 652)
7. शतपथब्राह्मण 5.4.3.20 (पृथिवीमातर्मा हिंसीर्म्मा अहंत्वाम्)
8. अग्निपुराण (223वां अध्याय)
9. वही
10. वही
11. वही
12. श्रीमदभागवत् 4/29/24
13. वही 4/29/26
14. वही 28-29